पूज्य
शशीप्रभु
जन्म जयंती
विशेषांक

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

November - 2025

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

भक्तिप्रधान ज्ञानदशाके धारक

सर्व ज्ञानीपुरुषोंके वचनोंका समन्वय करके उनके ज्ञानीपनेको
समझानेवाले, वर्तमान समाजको अति उपकारी ऐसे स्वानुभवविभूषित
पूज्य भाईश्री शशीभाईको
उनकी ९३वीं जन्मजयंतीके (मार्गशीर्ष सुदि अष्टमी) अवसर पर
उनके चरणोंमें स्वानुभूतिप्रकाश परिवारके
भक्तिपूर्ण शत–शत वंदन

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५२, अंक-३३५, वर्ष-२७, नवम्बर-२०२५

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके श्री 'परमागमसार'में से चुनी हुई 'कहानरत्नकी किरणें'

प्रश्न :- सम्यग्दर्शनका बहुत-बहुत महत्व बतलाया जाता है, इसका कारण क्या?

उत्तर :-सम्यग्दर्शनमें पूर्ण परमात्मा प्रतीतिमें आ जाता है उसके महत्वका क्या कहना! पूर्ण प्रभु प्रतीतिमें आ गया, फिर बाकी क्या रहा? १८९

*

जैसे सिंहको चारों ओर घूमते देखकर नींद नहीं आती, मारनेके लिये हथियारबन्द पुलिसको घूमते देख नींद नहीं आती है, वैसे ही जब तक तत्त्वनिर्णय न हो तब तक जीवको सुखकी नींद नहीं आती। १९०

*

बाहरकी विपदा - यह वास्तविक विपदा नहीं। बाहरकी संपदा - यह संपदा नहीं है। चैतन्यका विस्मरण ही घोर विपदा है, चैतन्यका स्मरण (संवेदन) ही वास्तवमें सच्ची संपदा है। १९१

*

सर्वज्ञका निर्णय करे - आदर करे - विश्वास करे - प्रशंसा रुचि करे - तो उसीमें स्वयंके सर्वज्ञस्वभावकी प्रतीति हो जाती है, यही पुरुषार्थका स्वरूप है। १९२

*

आत्माकी विकल्प सहित साधारण

महिमाको महिमा नहीं कहते। अन्तरमें रुचे तो वीर्य उछले, वह यहाँ-कहाँ उछलता है? साधारण धारणा और महत्ता तो अनन्त बार हुई, परन्तु यथार्थ आत्ममहिमा तो अन्तर-स्फुरित होनी चाहिऐ, एक यही कमी रह गयी है । प्रथम महात्मय होता है और पीछे माहात्मयकी उग्रता होते-होते एकाग्रता होती है । १९३

*

आत्म-अनुभवके बिना सब कुछ शून्य है। लाख कषायकी मन्दता करो या लाख शास्त्र पढ़ो, किन्तु अनुभव बिना सब कुछ व्यर्थ है। यदि कुछ भी न सीखा हो, पर अनुभव किया हो तो उसने सब कुछ सीख लिया, उसे बात करना भले ही न आए तो भी वह केवलज्ञान

प्राप्त कर लेगा। १९४

*

अल्प किन्तु सत्य ग्रहण करे तो उतनेमें तो केवलज्ञान प्रकट करनेकी शक्ति है । बहुत किन्तु विपरीत ग्रहण करे तो उसमें तो निगोदके अनन्त भव होनेकी शक्ति है। १९५

*

कोई क्रोधमें तन्मय हो और कहे कि मैं क्रोधका ज्ञाता हूँ, तो यह गलत है – क्योंकि वह तो क्रोधमे तन्मय है (क्रोधका) ज्ञाता नहीं। जो ज्ञानमें तन्मय है वही क्रोधके परिणामका ज्ञाता है। १९६

*

भाई ! तूँ विश्वास तो कर कि मेरे आनन्दके आगे स्मस्त प्रतिकूलता और सारी दुनिया विस्मृत हो जाती है – मैं ऐसी वस्तु हूँ। १९७

*

पात्र होना कठिन है। बातें करना सीख गया हो और ऐसा माने कि मैं समझ गया हूँ तो यह ठीक नहीं। बापू! यह समझना अति दुष्कर है, कितनी पात्रता – कितनी सज्जनता – कितनी योग्यता हो तब जीव समझने योग्य होता है। १९८

*

अहो! जिसके आनन्दके एक क्षणके (रसास्वाद)के आगे तीन लोकका सुख विष सम लगे– जहर जैसा लगे – तिनके–समान तुच्छ लगे – भगवान आत्मा तो ऐसा है। १९९

*

मेरे चैतन्य उपयोग हनन होता ही नहीं, जिसका हनन हो उसे उपयोग ही नहीं कहते। पर प्रभु! केवलज्ञान नहीं है न! केवलज्ञानका प्रयोजन ही क्या है? जिसके हाथमें केवलज्ञानकी खान आगयी है – उसे केवलज्ञान प्राप्त होगा ही। २००

*

परमात्मदशा भी द्रव्यमें नहीं, वह तो इससे रहित है। आहाहा! द्रव्य पर दृष्टि गये बिना उसे प्रतीतिमें ज़ोर आ ही नहीं सकता, ज़ोर आता भी नहीं है। पर्यायका लक्ष्य छोड़कर 'मैं तो ऐसा वर्तमानमें ही हूँ' – इस प्रकार द्रव्यमें तन्मय हो जाए, तब ही प्रतीतिमें ज़ोर आ सकता है। २०१

*

भगवान आत्मा ज्ञानकी मौजोंमें उछलता हुआ, परके काम और रागके काम मेरे नहीं – ऐसी दृष्टि करता हुआ केवलज्ञानके किनारे आ खड़ा हुआ है। २०२

*

राग होने पर भी साधकके हृदयमें सिद्ध भगवान टंकोत्कीर्ण रहते हैं। २०३

*

भविष्यमें कैसे कर्मका उदय होगा – ऐसा विचार मत कर। पर, मैं भविष्यमें ऐसा होऊंगा कि पुरुषार्थ उग्र हो गया तो एक क्षणमें केवलज्ञान प्राप्त कर लूँगा। २०४

*

कागज पर चित्रित दीपक–तिनकों को जलाता नहीं, उसी प्रकार केवल शास्त्रज्ञान संसार (बन) को नहीं जला सकता। २०५

*

जिनके जन्म–मरणकी गांठ (भेदित) नहीं हुई, उन्होंने जीवनमें कुछ भी नहीं किया और जिन्होंने गृहस्थाश्रममें भी जन्म–मरण रूपी

ग्रंथीको भेद दिया – उन्होंने सब कुछ कर लिया। सिद्ध प्रभु तो उनके हाथ आ गये हैं। २०६

*

(पर) वस्तुने शरीरका स्पर्श नहीं किया, शरीरने कर्मका स्पर्श नहीं किया, कर्मने विकारको स्पर्श नहीं किया, विकार निर्मल पर्यायका स्पर्श नहीं करता, निर्मल पर्याय द्रव्यको नहीं छूती। आहा! वस्तु स्वभाव सूक्ष्म है, उसके एक प्रदेशमें अन्य प्रदेशका अभाव है, एक गुणमें अन्य गुणका अभाव है, एक पर्यायका अन्य पर्यायमें अभाव है, विभावव्यंजन पर्यायका स्वभावव्यंजन पर्यायमें अभाव है। – ऐसा वस्तुभाव सर्वज्ञने जैसा देखा है वैसा कहा है। २०७

*

रागने स्वभावका स्पर्श नहीं किया – इस बातकी प्रतीति हुए बिना यह बात समझमें नहीं आयेगी कि निमित्त उपादानका स्पर्श नहीं करता । २०८

*

जिन्होंने स्वयंके पर्याय अंशसे दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि की वे अन्य द्रव्यको भी इसी प्रकार देखते हैं अर्थात् अन्य पदार्थोंको भी उनकी पर्यायसे नहीं देखते, बल्कि उन्हें द्रव्य रूपसे ही – वस्तुरूपसे ही – अखंड देखते हैं। २०९

*

प्रथम निज स्वभाव – श्रद्धामें – ज्ञानमें – रुचिमें – और लक्ष्यमें आए तभी इसका वीर्य स्वभाव-सन्मुख स्फुरित होता रहे । यह सम्यग्दर्शनकी पूर्व भूमिका है, यही सम्यग्दर्शनका उपाय है, अन्य कोई भी उपाय नहीं है। २१०

*

केवलज्ञानमें कैसा आनन्द है और उसका कैसा स्वरूप है, उसका प्रतिभास भावश्रुत ज्ञानमें हो जाता है। २११

*

दृष्टि स्वभावरूप परिणित हुयी कि हुयी, फिर उसका स्मरण क्या करना? रुचिका तो परिणमन हुआ सो हुआ, वह तो सदा ही रहनेवाला है। 'मैं निःशंक हूँ' इस भावका स्मरण नहीं करना पड़ता। (उपयोग) शुभाशुभमें हो या आत्म-अनुभवमे (दृष्टिका) सम्यक्परिणमन तो जैसा है वैसा ही रहता है। २१२

*

विकारकी तुच्छता भासित हो तो वीर्य वहाँसे खिसके और स्वभावकी महिमा भासित हो तो वीर्य वहाँ ढ़ले। २१३

*

'अभिप्राय' – यह तो जीवका जीवन हो जाता है – उसका घर बन जाता है । अभिप्राय-परिवर्तन तो उसे जीवन-परिवर्तन सा लगता है। २१४

*

'जैन'– अर्थात् जो अन्तरमें समाये वह जैन है। बाहरमें जितने भी उफान आते हैं, वे तो प्रकृतिके खेल हैं। विकल्प उठते हैं, ये सब भी प्रकृतिके ही खेल हैं। २१५

*

जिसने बाहरमें किसी रागमें – 'संयोगमें-क्षेत्रमें व ऐसे ही कहीं न कहीं या किसी द्रव्यमें – क्षेत्रमे-कालमें, कुछ ठीक सा मानकर, वहाँ रुककर समय गंवाया है – उसने अपनी

आत्माको ठग लिया है। २१६

*

स्वके 'लक्ष्य'का मार्ग अलौकिक है – यह तो वीतराग देवका मार्ग है। वे तो कहते हैं कि तूँ मेरी ओर न देख! वीतराग प्रभुके सिवा कौन ऐसा कह सकता है? २१७

*

प्रथम समझे तो सही, स्वभावका पक्ष तो हो याने राग और निमित्तकी ओर झुकना योग्य नहीं पर 'स्वभाव' की ओर ही ढ़लना योग्य है – ऐसा यथार्थ निर्णय तो हो, निर्णयरूपी वज्रस्तंभ तो गाड़े, – इसके बिना एक डग भी नहीं भर सकते। २१८

*

द्रव्यमें जितनी सामर्थ्य निहित है , उतनी ही सामर्थ्य जबतक दृष्टिमें न आये – तब–तक निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती । २१९

*

जो बाहरकी अनुकूलताको अनुकूलता मानता है, बाह्य प्रतिकूलताको प्रतिकूलता मानता है–वह प्रगटरूपसे भगवानको (आत्माको) शरीर–स्वरूप ही मानता है। २२०

*

धर्मीका चित्त आत्माके सिवा अन्य कहीं नहीं रमता। वे संसारमें सब कुछ ऊपरी नजरसे ही देखता हैं, पर उनका चित्त तो कहीं भी नहीं रमता। मक्खीका चित्त शक्करके स्वादमें इतना आसक्त रहता है कि पंखोपर दबाव होने पर भी वह वहाँसे हटती नहीं। वैसे ही धर्मीका चित्त आत्मामें रमा रहता है। प्रतिकूलता आने पर भी–बाहरी दबाव आने पर भी, आत्मासे उनका चित्त नहीं हटता। दुनियाको भले ही धर्मी मूर्ख लगे–पागल लगे। २२१

*

'सर्वज्ञ–सर्वदर्शी' – ये शब्द जब सामने आते हैं, तब आहाहा! अखंड वस्तु जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है – वह पूरी की पूरी नज़रोंमे तैरने लगती है। २२२

*

क्या पुण्य–परिणामरूपी कार्य सर्वज्ञको सौंपा जाय? – चक्रवर्तीको आंगन बुहारनेका काम नहीं सौंपा जाता। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है – जिसको ऐसा भान हुआ उसे पुण्यके कार्यमें कर्ताबुद्धि नहीं होती। २२३

*

सम्यक्त्वीकी पूरी दुनियासे रुचि उड़ गयी है, – उसे एक आत्मामें ही रुचि है । वह एक आत्माको ही विश्राम–स्थल मानता है । एक आत्माकी ओर ही उसकी परिणति रह–रह कर जाती है। २२४

*

पुण्यसे आत्मा प्राप्त होती है – यह तो आत्माको गाली देना है। इसे प्राप्त करनेका साधन तो इसके अन्तरमें ही निहित है, यह कोई पंगु को है नहीं। २२५

*

भगवान आत्मासे एकाकार होना – उसमें तन्मय होना – इसीका नाम व्रत है। २२६

*

आत्मा आनन्दस्वरूप है। इसके भान–बिना व्रत, जप और तप – ये सभी की बिन दूल्हे बारात जैसे हैं। २२७

*

गुरुआज्ञा सम पथ्य नहीं !!!

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

ग्रंथ–ग्रंथोंमें श्रीगुरुका अतीव महत्त्व गानेमें आया है, जो यथार्थ ही है; क्योंकि वे भवरोगसे बचाते हैं, अनन्त करुणा करके बचाते हैं। अतः सर्वदोष रहित श्रीगुरु जैसे इस जगतमें कोई उपकारी नहीं है। ऐसा समझनेवालेकी प्रतीति संपूर्ण आज्ञाकारिता उत्पन्न कराती है। जैसे कि शरीर रोगसे – रोगकी वेदनासे छूटनेके लिए प्रयत्नवान रोगी वैद्यकी सूचनाओंका ज़रा सा भी उल्लंघन नहीं करता है, तो ही भयंकर रोग / वेदना मिटेगी, ऐसी प्रतीतिपूर्वक परहेजका पालन करना सहज है, वैसे अगर अनन्त परिभ्रमणके दुःखकी वास्तविकता समझमें आये, तो स्वप्नमें भी गुरु–आज्ञाका उल्लंघन नहीं होगा, परन्तु मुक्तिका कारण जानकर भक्ति आयेगी, तो स्वच्छंदसे सहज बचा जा सके वरना तो जीवके स्वच्छंदको रोक नहीं सकते ऐसा जानने योग्य है।

(अनुभव संजीवनी–७१९)

'ग्रंथ–ग्रंथोंमें श्रीगुरुका अतीव महत्त्व गानेमें आया है,' शास्त्रोंमें, अनेक ग्रंथोंमें गुरुका महत्त्व गाया है। भगवानकी वाणीमें भी बहुत आया है – जिसमें काफी सारे पंथ चलते हैं – ये सब नानक पंथ, सहजानन्दस्वामीका पंथ, फिर ये सिन्धी लोगोंमें बहुत–से गुरु हो गये। सिख लोगोंमें भी, राधास्वामीमें भी सिख लोग ही ज्यादा हैं, लेकिन तीर्थंकरकी वाणीमें बहुत महत्त्व आया तो इसके पीछे पूरा पंथ शुरू हो गया। इतना अधिकतर महत्त्व आया है कि जिसकी बदौलत स्वतंत्र पंथ शुरू हो गया।

'जो यथार्थ ही है;...' महत्त्व गाया है सो यथार्थ ही है। *'क्योंकि वे भवरोगसे बचाते हैं,..'* जो अनादिसे भवरोग लागू हो गया है और भव पर भव, भव पर भव, भवभ्रमण करता ही रहा है। उस रोगसे वे बचाते हैं। *'अनन्त करुणा करके बचाते हैं।'* उनकी करुणा भी अनन्त है। *'अतः सर्वदोष रहित श्रीगुरु जैसे इस जगतमें कोई उपकारी नहीं है।'*

जिसे गुरुका उपकार समझमें आता है वह ऐसा समझमें आता है कि, इनके जैसे उपकारी कोई नहीं! सोगानीजीने लिया है कि नहीं – अनंत तीर्थंकरोंसे भी गुरुदेव मेरे लिए तो अधिक हैं, इनके जैसे उपकारी कोई नहीं हैं।

मुमुक्षु :– वे भी सर्वदोषोंसे रहित!!

पूज्य भाईश्री :- *'अतः सर्वदोष रहित श्रीगुरु जैसे इस जगतमें कोई उपकारी नहीं है।'* यहाँ सर्वदोष रहित क्यों कहा पता है? क्योंकि अभी तो छद्मस्थ है यह क्या पता नहीं? परन्तु मुमुक्षुको इनके कोई दोष दिखते ही नहीं।

पूज्य बहिनश्री गुरुदेवश्रीके बारेमें क्या कहते थे पता है? गुरुदेव तो गुणभंडार हैं !! क्या कहते थे? गुरुदेव तो गुण भंडार हैं!! अब जहाँ केवल गुणोंका भंडार ही दिखता हो वहाँ दोष कैसे दिखेंगे उसे! दृष्टि बदल जाती है। पूरीकी पूरी दृष्टि बदल जाती है।

मुमुक्षु :- दोष होता है क्या?

पूज्य भाईश्री :- हो या न हो बादकी बात है। दिखते नहीं हैं यह बात वास्तविक है।

मुमुक्षु :- हो या न हो मुमुक्षु उस दिशामें जाना ही नहीं चाहता।

पूज्य भाईश्री :- गुरुके लिये वक़ालत करनेकी ज़रूरत पड़ेगी तब बुला लेंगे !!

'सर्वदोष रहित श्रीगुरु जैसे इस जगतमें कोई उपकारी नहीं है। ऐसा समझनेवालेकी प्रतीति..' समझ द्वारा ऐसी प्रतीति ही उन्हें हो जाती है। *'संपूर्ण आज्ञाकारिता उत्पन्न कराती है।'* क्या रिज़ल्ट आया? आज्ञाकारिता उत्पन्न हुई! १४७वाँ (कृपालुदेवका) पत्र ले लेना। आज्ञाकारितामें आना सुलभ नहीं है, फिर भी सुलभ होता भी है। सुलभ नहीं होनेके बावजूद भी सुलभ है भी।

दृष्टांत लिया है, *'जैसे कि शरीर रोगसे - रोगकी वेदनासे छूटनेके लिए प्रयत्नवान रोगी..'* ऐसी शरीरमें वेदना उठी हो,ऐसा रोगी हो कि वेदना..वेदना..वेदना.. कैसी? काली वेदना! (तीव्रतम वेदना)। सोनगढ़में एक वृद्धा थीं, मैं और सोगानीजी हम दोनों गये थे, वैसे ले गये थे हमको कि, चलिये ज़रा आपकी बातोंसे उन्हें थोड़ी साता उत्पन्न होगी। थोड़ी साताका अनुभव होगा। सोगानीजीने सिर्फ इतना पूछा कि आपको कैसी वेदना हो रही है? तो कहा सिरमें दर्द होता है। कैसी वेदना हो रही है? तो कहा, भीतरमें हज़ारों बिच्छू काटते हों ऐसी वेदना हो रही है। कैसी? बिच्छू काटते हों और एकसाथ हज़ारों बिच्छू काट रहे हों और मेरे सिरको खा रहे हों ऐसी वेदना हो रही है। यानी कि, मानो मैं नरकमें हूँ और नरककी वेदना यहाँ मनुष्यगतिमें भोग रही हूँ!! ऐसा कहती थीं। ठीक! अब ऐसे रोगमेंसे - वेदनामेंसे छुड़ानेवाला कैसा दिखेगा? बताईये ज़रा! (परन्तु) सोगानीजी कुछ बोले नहीं। वैसे भी कम बोलते थे। कम बोलनेकी प्रकृति थी। फिर ये जो लोग ले गये थे वे तो बुलवानेकी चेष्टा करेंगे ही, तो पूछा आप क्यों कुछ नहीं बोलते हो? फिर भी थोड़ी देर तक मौन रहे। (वापिस पूछा) कि, आपको क्या विचार आ रहा है? ये सुनकर आपको क्या

विचार आया? तो बोले कि, यदि मुझे ऐसी वेदना हो तो मेरा पुरुषार्थ फाटफाट चले!! पुरुषार्थ फट जाये!! शरीरसे भिन्नताका पुरुषार्थ होता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्री बोलते थे न कि गजसुकुमारकी क्षण हमें प्राप्त हो।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, गजसुकुमारको जो क्षण प्राप्त थी (वैसी हमें हो)।

मुमुक्षु :- भाईश्री, आपने कुछ कहा था तब?

पूज्य भाईश्री :- नहीं। मैं कुछ नहीं बोला था। याद नहीं आता है कि मैंने कुछ बोला हो ऐसा। *'जैसे कि शरीर रोगसे - रोगकी वेदनासे छूटनेके लिए प्रयत्नवान रोगी वैद्यकी सूचनाओंका ज़रा सा भी उल्लंघन नहीं करता है,..'* कि, भाई! आप जैसा कहें वैसा बापू! लेकिन मुझे इस वेदनासे छुड़ाइये। क्या कहेगा? कि, आप जो कहो मंजूर है लेकिन मुझे इस वेदनासे छुड़ाईये। पैर पकड़ लेगा। मुझे छुड़ाइये! मुझे छुड़ाइये! इस वेदनासे।

मुमुक्षु :- भाईश्री! आप कुछ बोले नहीं थे लेकिन आपको विचार क्या आया था?

पूज्य भाईश्री :- वह अभी याद नहीं, परन्तु उनके भावोंकी अनुमोदना हुई थी इतना ख़्याल है। सोगानीजीके भावोंकी अनुमोदना हुई थी।

'रोगी वैद्यकी सूचनाओंका ज़रा सा भी उल्लंघन नहीं करता है, तो ही भयंकर रोग / वेदना मिटेगी, ऐसी प्रतीतिपूर्वक परहेजका पालन करना सहज है,..' इसकी प्रतीति होती है कि,यदि मैं इनके कहे अनुसार करुँगा तो ज़रूर मेरी वेदना मिटेगी। फिर जीवको परहेजमें रहना कठिन नहीं लगता। आसान लगता है। क्योंकि कहाँ वेदना और कहाँ परहेज! वेदनाके आगे परहेज तो कुछ नहीं। *'परहेजका पालन करना सहज है, वैसे अगर अनन्त परिभ्रमणके दुःखकी वास्तविकता समझमें आये, तो स्वप्नमें भी गुरु-आज्ञाका उल्लंघन नहीं होगा,..'* अनंत परिभ्रमणके दुःखोंको समझे तो सपनेमें भी गुरुआज्ञाका उल्लंघन नहीं करेगा।

'परन्तु मुक्तिका कारण जानकर भक्ति आयेगी,..' उल्लंघन तो नहीं होगा लेकिन आज्ञाकी भक्ति होगी। जिसे आज्ञारुचि कहते हैं। *'तो स्वच्छंदसे सहज बचा जा सके..'* उसे फिर स्वच्छंद होनेका तो कोई अवकाश है ही नहीं। *'वरना तो जीवके स्वच्छंदको रोक नहीं सकते ऐसा जानने योग्य है।'* स्वच्छंद अनादिसे इतना बड़ा दोष है कि जाने-अनजाने भी हो जाता है, रोक नहीं सकते- ऐसा समझना चाहिए।

यह तो एक पहलू लिया है, वरना गुरुके बारेमें तो बहुत-बहुत भरा है। यह तो एक बात एक पहलूसे ली है।

*

(श्री 'अनुभव संजीवनी' बोल-७१९ पर प्रवचन)

मुमुक्षुओंके हृदयमें देव-गुरु-शास्त्र-सत्पुरुषोंके प्रति भक्ति उत्पन्न करानेवाले ऐसे

सौम्यमूर्ति परम पूज्य भाईश्रीकी भक्तिप्रधान शैलीकी झांकी

*** शासननायक भगवान महावीर प्रति हृदयोद्गार :-**

श्री भगवान महावीरस्वामीका शासन अभी प्रवर्तमान है और इनके शासनमें वर्तमानमें उनके द्वारा प्ररूपित उपदेशकी परम्परासे हमलोग लाभ ले रहे हैं। अतः उनका भी हम पर उपकार वर्तता है। भले ही वे प्रत्यक्ष नहीं हैं, वर्तमानमें वे सिद्धालयमें विराजमान हैं फिर भी उनकी देशना आचार्योंकी परंपरा द्वारा जो चली आ रही है जो गुरुदेवश्री पर्यंत हमें मिली, अतः भगवान हमारे उपकारी हैं। .....उन्होंने जिस मार्गको निरूपित किया और आत्मस्वरूपको बतलाकर उन्होंने जो शुद्धता प्रकट की, वह सब कुछ मंगल है, महिमा करने योग्य है।

*

*** कुंदकुंदआचार्यदेव प्रति हृदयोद्गार :-**

श्री समयसार जैसी कृति जो कुंदकुंदाचार्यजीने की, इस कृति पर से इनकी महानता के दर्शन होते हैं, उनकी स्वभावदृष्टि के दर्शन होते हैं। उन्हें न केवल स्वभावदृष्टि थी, इससे अतिरिक्त स्वभावदृष्टि की अभिव्यक्ति उन्होंने शब्दोंमें ग्रंथारूढ़ करके fantastic काम किया है। अति-अति सामर्थ्य के बल से ऐसा लिखा है। उनके सामर्थ्य के द्वारा लोगोंने उनकी महानता के दर्शन किये हैं।

एक समर्थ आचार्य हुए, दिगम्बर आचार्योंकी परम्परा में देखा जाये तो कुंदकुंदाचार्य बहुत समर्थ आचार्य हो गये, ऐसी प्रतीति इनकी कृतियों से होती हैं। आज भी, सैंकडों-हजारों साल पश्चात भी उनके वचनों को आधारभूत - authentic गिने जाते हैं। अच्छा! क्या यह कुंदकुंदाचार्य का वचन है? फिर तो बात ही खत्म हो जाती है। बात खत्म! ऐसे authentic वक्ता हैं वे। गुरुदेवश्री तो समयसार पर आफरीन हो जाते थे। कुंदकुंदाचार्यदेव की स्वभाव की अभिव्यक्ति कराने की शैली, स्वभावदृष्टि की अभिव्यक्ति जबरदस्त है!!

*

*** परम कृपालुदेव प्रति हृदयोद्गार :-**

(कृपालुदेव) बहुत निर्मल परिणति लेकर वैमानिकदेवमें गये हैं। वहाँसे मनुष्यक्षेत्रमें आकर चरम शरीर अवधारणकर निर्वाणपदको प्राप्त होंगे। मुनिदशा अंगीकार करके, संपूर्ण चारित्रकी सिद्धि करके निर्वाणपदको प्राप्त होंगे। अपने निर्मलज्ञानमें उन्हें ऐसा अवभासित हुआ है। एक अंगत काव्यमें इस बातकी प्रसिद्धि की है। 'धरीने एक ज देह जाशुं स्वरूप स्वदेश' अतः वर्तमान मुमुक्षु समाज पर, हज़ारों लोगों पर उनका उपकार वर्तता है।

...'गुरुदेवश्री' ने तो बहुत महिमा किया है, इसमें तो कोई सवाल ही नहीं है। यानी कि वास्तवमें अध्यात्मकी पराकाष्टा क्या है? कि आत्माका आश्रय ले सके ऐसी मोक्षमार्गकी बात उनके वचनोंमें उपलब्ध है। और मैंने तो सीधा ही पूछा था। 'गुरुदेवश्री' को तो मैंने सीधा ही पूछा था। और तब बहुत ही प्रसन्नतासे यह बात पर गुरुदेवश्रीने अपनी सहमती दी थी कि, वाकई ऐसा ही है कि, 'श्रीमद्जी' के वचनोंमें मोक्षमार्ग अखण्डरूपसे मौजूद है। मैंने शब्द तो ऐसे इस्तेमाल किये थे। उन शब्दोंको मैं आज भी नहीं भूला। अखण्ड मोक्षमार्ग उनके वचनोंमें है कि नहीं ? (तो कहा) ऐसा ही है। अखण्ड मोक्षमार्ग उसमें मौजूद है। बस! बात पूरी हो जाती है। जब अखण्ड मोक्षमार्ग उपलब्ध है तो वह शास्त्र है, वह आगम है और वंदनीय है, पूजनीय है।

*

*** अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी प्रति हृदयोद्गार :-**

गुरुदेव तो स्वयं एक अलौकिक द्रव्य थे, अलौकिक उनका परिणमन था और पुण्यका वाणीका योग भी कोई अलौकिक सातिशय योग था। गुरुदेवश्रीको श्रुतकी लब्धि थी। सुननेवालेको तो कानमें कोई अमृतकी धारा करता हो ऐसा मीठा लगे। कितने ही जीवोंको तो ऐसा लगा है कि मानों कोई दैवी वाणी आ रही है! एक असाधारण युगपुरुष जैसा गुरुदेवका व्यक्तित्व था एवं कर्तृत्व भी ऐसा ही था।

कुछएक जीवोंको तो ऐसा लगा है कि, मानों दैवी वाणी आ रही है! आवाज़ भी इतनी बुलंद थी और धारावाही - वाणीमें ऐसी धारा थी, भीतरमे परिणमनकी ऐसी धारा थी, ऐसा ही कोई सामंजस्य था। आत्माका स्वरूप मानो जैसे साक्षात् तीर्थंकर बतलाते हो ऐसे समझमें आता था। सातिशय वाणी थी।

*

*** प्रशममूर्ति भगवती माता प्रति हृदयोद्गार :-**

बहिनश्रीकी नज़र बहुत सूक्ष्म थी। दूसरोंको समझानेमें भी बहुत सूक्ष्म। गणधरका जीव है न! गणधरका जीव है तभी तो भविष्यमें बारह अंग रचनेवाले हैं।

उनके साथ कोई भी मुमुक्षु प्रश्नोत्तर करे तो भी वे बहुत उपयोगपूर्वक जवाब देते थे। ऐसा नहीं कि, चाहे कुछ भी जवाब दे दें। मैंने तो मार्क किया है। उनकी हयातीमें यह मार्क किया है। (इसलिये) तभी विचार आया था कि वे गणधरके जीव हैं न इसलिए सामाजिक दृष्टिकोण भी उनका बहुत सुस्पष्ट है कि, वर्तमान समाज कहाँ भूल करता है। गुरुदेवके अनुयायी भी कहाँ भूल करते हैं, वह उनको बहुत स्पष्ट था।

इसलिए उनके वचनामृत छपे तब गुरुदेव फिदा हो गए। आफरीन हो गए। ओहोहो...! लाख पुस्तक छपवाओ। हमने आज तक (दूसरी) पुस्तकके लिए कुछ नहीं कहा। इस पुस्तकके लिए कहते हैं कि लाख छपवाओ!

*

* पुरुषार्थमूर्ति पूज्य सोगानीजीके प्रति हृदयोद्गार :–

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि – इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरूपी सपूत कोई जागा नहीं था, तब तक जो–जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग–अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नयी यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका – वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो–जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्मा हैं, धर्मात्मा हैं, उन अनंत–तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सन्मान है।

मुमुक्षु :– गुरुदेवने उनके बारेमें एकावतारी हैं ऐसा कहा लेकिन उनको खुदको पता लग गया हो ऐसा उल्लेख कहीं आता है ? कि जैसे मैं एकावतारी हूँ !

पूज्य भाईश्री :– उनको खुदको खयालमें नहीं आया, ऐसा खयाल गुरुदेवश्रीको आया है। वे खुद तो इसी भवमें पूर्णता प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए थे। हमलोगोंको विशेष परिचय था तो ऐसा लगता था कि, अगर आयुष्य होता तो शायद ऊपरके गुणस्थानमें आ जाते (यानी कि) मुनिदशामें (आ जाते!) बहुत पुरुषार्थ था! (अगर ऐसा होता) तो इस कालमें भावलिंगी मुनिके दर्शन हो जाते!!

*

*** परम भक्त पूज्य श्री सोभागभाई प्रति हृदयोद्गार :-**

परम कृपालुदेवकी भेंट होनेके बाद उनके प्रत्यक्ष समागममें रहेनेके लिए उनकी आत्मा हमेशा चिंतित रहा करती थी। और इन छः-सात वर्षकी अंतिम आयुके दौरान वे ५६० दिन भिन्न-भिन्न स्थानोमें प्रत्यक्ष समागममें रहे थे। यह कह सकते हैं कि कृपालुदेवका प्रत्यक्ष समागम यह उनके जीवनकी एक परिणति बन गई थी। और कोई भी दिन ऐसा नहीं छूटा होगा कि उनको कृपालुदेवका स्मरण नहीं हुआ हो। कृपालुदेवमें ही उनका जीव लगा रहता था और वही उनकी परिणतिकी भजना थी। अंतिम अवस्थामें उन्होंने जो भाव व्यक्त किये थे वह उनकी पात्रताकी चरमसीमाको दर्शानेवाले हैं। उन्होंने कृपालुदेवको लिखा था कि 'अब रोगके कारणसे मेरा देह नहीं छूटेगा किंतु आपके वियोगकी वेदनासे देह छूटेगा'! इसके पहेले उन्होंने अनेक पत्रोंमें अनेक प्रकारसे सायला पधारने हेतु विनंती की थी किंतु ऐसा लगता है कि वियोगकी वेदना तीव्र होने के लिए ही वे सायला आने में देर करते रहे। जब पू. श्री सौभाग्यभाईके अंतिम हदके पात्रताके परिणाम देखे, कि शीघ्र ही वे प्रत्यक्ष दर्शन के लिए आ पहुंचे और वहाँसे 'बीजज्ञान' देने के खास प्रयोजनार्थ उनको ईड़र ले गये। जिसके फलस्वरूप ईड़रसे आने के बाद उनको निर्विकल्प परमार्थ भवछेदक सम्यक्दर्शनकी - आत्म साक्षात्कारकी प्राप्ति हुई थी।

करुणासागर 'पूज्य भाईश्री शशीभाई' की ९३वीं जन्म-जयंती महोत्सव पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई की आगामी ९३वीं जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. २४-११-२०२५ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. २८-११-२०२५ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. २७-११-२०२५ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु निम्नलिखित पते पर पहुँचनेकी तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क: श्री राजेन्द्र जैन, मो. ९८२५१५५०६६

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चौक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

'तू परमात्मा है' – ऐसा नक्की कर !

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी–सीडी –१५ – B

– प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

मुमुक्षु :– तू परमात्मा है ऐसा कहे और तू स्वभावसे परिपूर्ण है ऐसा कहे, इन दोनों में कोई भिन्न–भिन्न प्रयोजन बताना है?

समाधान :– दोनों एक ही बात है। स्वभावसे परिपूर्ण है और परमात्मा है। तू स्वयं भगवान है, ऐसा कहते हैं। और तू परिपूर्ण है। स्वभाव अपेक्षासे तू परिपूर्ण है, भगवान जैसा है। दोनों में कहने का आशय एक ही है। द्रव्य अपेक्षासे तू परिपूर्ण है। और भगवान को तू बाहर देखता रहता है, तू स्वयं भगवान है। ऐसे तू भगवान को पहचान। भगवान की भक्ति करते हुए भगवान कैसे हैं, भगवान द्रव्य–गुण–पर्यायसे भगवान का क्या स्वरूप है? ऐसा विचारकर तू तेरा स्वरूप पहचान, तू भगवान जैसा है।उसमें कहने का आशय एक ही है। यह स्वभाव की ओरसे कहते हैं, यहाँ परमात्मा की ओरसे कहते हैं। कहने का आशय एक ही है।

मुमुक्षु :– परमात्मा में प्रगटपना और स्वभाव में शक्तिपना बताना है, ऐसी कोई भिन्नता ले सकते हैं? परमात्मपना है कि तू परमात्मा है अर्थात् व्यक्ति में तू तेरी परिपूर्ण शक्ति प्रगट कर सकता है, ऐसी तुझमें ताकत है, ऐसा बताना है?

समाधान :– ऐसा नहीं, तू शक्तिसे परमात्मा है और तू परमात्मा हो सकेगा, ऐसा कहना है। वर्तमान व्यक्ति है ऐसा नहीं, तू वर्तमान शक्तिरूप तेरा स्वभाव शक्ति में परमात्मा है और वैसा होने का तुझ में सामर्थ्य है। अनन्त शक्तिसे भरपूर तेरी शक्ति है, उसे तू पहचान और उसे प्रगट कर, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :– माताजी! दूसरा एक प्रश्न है कि इस जगत में वस्तु है वह अपने स्वभावमात्र है। आत्मा ज्ञान का कर्ता और विभावदशा में अज्ञान, राग–द्वेष का कर्ता है। परद्रव्य का कर्ता आत्मा नहीं है ऐसी हमें श्रद्धा है, फिर भी परद्रव्य की प्रवृत्ति में आनेपर तन्मयता भासित होती है, तो वह कर्तृत्व कैसे नाश हो और ज्ञातापना कैसे प्रगट हो? यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :– आत्मा का स्वभाव का कर्ता है। स्वभावसे स्वयं स्वयं का कर्ता है। अज्ञान अवस्थासे विभाव का कर्ता है। परद्रव्य का कर्ता अज्ञान अवस्थासे है। उसने नक्की किया परन्तु बराबर नक्की नहीं किया है। यथार्थ नक्की करे तो–तो उसकी तन्मयता छूट जाय। नक्की किया है वह ऊपरसे (किया है)। अंतरसे नक्की करे तो उसकी कर्ताबुद्धि छूटे बिना रहती नहीं। ऊपर–ऊपरसे नक्की किया, वास्तविक नक्की करे तो परद्रव्य की प्रवृत्ति में तन्मय हो ही नहीं। उसका उपाय एक (ही है), स्वयं ज्ञातापना प्रगट करे तो

कर्तापना छूटे। ज्ञातापना प्रगट हुआ नहीं इसलिये कर्तापना छूटता नहीं। और ज्ञायकता प्रगट करनी चाहिये कि मैं तो ज्ञायक हूँ। मैं तो ज्ञाता, कोई पदार्थ को कर सकूँ, कोई परद्रव्य को कुछ भी बदल सकूँ ऐसा सामर्थ्य नहीं है। मैं अपने स्वभाव का कर्ता हूँ। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, कोई किसीको कर नहीं सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र अपने स्वभावसे परिपूर्ण है। मैं मेरे स्वभावसे परिपूर्ण हूँ। कोई किसीको कर नहीं सकता। मैं तो ज्ञाता हूँ। बाह्य प्रवृत्ति में यदि वह ज्ञातापना प्रगट करे तो कर्तापना छूटे। ज्ञायकता प्रगट नहीं हुयी है तो कर्तृत्व छूटता नहीं। ज्ञाता हो जाये। जो करे सो करतारा, जाने सो जाननहारा। जाननहार तो कर्तृत्व छूटे।

सम्यग्दृष्टि को ज्ञाताधारा प्रगट हुई है, ज्ञायकता प्रगट हुई है। इसलिये उसकी कर्तृत्वबुद्धि छूट गयी है।प्रत्येक कार्य में जुड़े, गृहस्थाश्रम में हो, अनेक प्रकार के कार्य में दिखाई दे तो भी कर्ता होनेपर भी अकर्ता है। कर्ताबुद्धि छूट गयी है। अस्थिरता का कर्तृत्व खड़ा है, लेकिन उसकी कर्ताबुद्धि छूटकर ज्ञायक की धारा प्रतिक्षण चालू ही है। मुक्ति का मार्ग एक ही है। ज्ञाताधारा-ज्ञायकता हो तो कर्तापना छूटे। जो ज्ञाता हो, उसका कर्तृत्व छूटकर ज्ञायकता होती है इसलिये मुक्ति के पंथ पर जाता है। ज्ञायकता की श्रद्धा, ज्ञायकता का ज्ञान और ज्ञायकता की लीनता और ज्ञाता की धारा कि मैं ज्ञाता ही हूँ, ऐसी ज्ञातारूपी परिणति हो तो कर्ताबुद्धि छूटे बिना रहती नहीं। उसका उपाय एक ही है।

ज्ञानचेतना प्रगट करे तो कर्तृत्व छूटे। ज्ञान की चेतना, ज्ञायकचेतना प्रगट करनी चाहिये। सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो तो उसे कहीं भी कर्तृत्व होता नहीं। ज्ञायकता, प्रत्येक प्रसंग में उदासीन ज्ञाता रहता है। चाहे जैसी चक्रवर्ती की प्रवृत्ति में हो, लेकिन ज्ञायकता, उसकी ज्ञायकता चालू ही रहती है। पहलेसे ज्ञायकता का प्रारंभ हुआ वह अंत तक ज्ञायकता ही रहती है। मुक्ति के मार्ग में वह ज्ञायकता (चालू ही रहती है)। सम्यग्दृष्टि चुतर्थ गुणस्थानसे लेकर पंचम गुणस्थान में भी ज्ञायकता, छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में ज्ञायकता (रहती है)। ज्ञायकता उग्रता होती जाती है। ज्ञायकता एक ही मुक्ति का मार्ग है। ज्ञायकतामेंसे ज्ञान के भाव ज्ञायकतारूप ज्ञायक की पर्याय प्रगट होती है, शुद्धि की पर्याय प्रगट होती है, लीनता की पर्याय प्रगट होती है।एकत्वबुद्धि मेंसब विपरीत पर्याय प्रगट होती है। उसका उपाय एक ही है-ज्ञायकता प्रगट करे तो तन्मयता छूटे। उसका अन्य कोई उपाय नहीं है।

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (नवम्बर-२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि

श्रीमती हंसाबहिन अजीतभाई शाह, भावनगर

की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।

अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्रीको पूज्य सोगानीजीका पत्र

– 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' – पत्रांक–४४

कलकत्ता
१०–९–१९६३

ॐ

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

आत्मार्थी.....

पत्र आपका ता. ३–९ का मिला। पहलेवाला पत्र भी यथासमय मिल गया था। दशलक्षणी पर्व, आपने तीन लोकमें परम उत्तम, निर्भय बनानेवाले, परम निर्भय, सिंहस्वरूप श्री गुरुदेवके सान्निध्यमें मनायें होंगे। वह कहते हैं – ''स्वभावअंशमें किंचित् भी दोष नहीं है, नित्य स्वभावमें दृष्टि थंभ जानेसे, उत्पन्न हुए सहज स्वभावमें, क्षमा आदि दूषित भाव प्रत्यक्ष पराश्रित (जड़के) परके हैं; अतः सहज क्षमाभाव त्रिकाल जयवंत वर्तो! हमने कभी दोष किया ही नहीं, ऐसा स्वभाव निरंतर वृद्धि पामो। विभावकी गूँजमें गूँजता हुआ अज्ञानभाव सहज नाश पामो। विभावमें तनीजो नहीं। स्वभाव–सीमामें निरंतर अडिग जमे रहो। क्षणिक विभाव वेदीजता हुआ अधिककी सीमाको पार नहीं कर सकता, अतः वहीं लय हो जाता है।''

''करता करम क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्तृत्व सकति अखण्ड रीति धरै है।
याहीके गवेषी होय ज्ञानमाहिं लखि लीजै,
याहीकी लखनि या अनंत सुख भरे है।।''

ज्ञान कणिका पत्र द्वारा मँगवाई सो यह तो आपके पास ही है। स्वअवलंबनसे सहज ही विभावसे पृथक् होकर प्रगटती रहती है। हे शशीभाई! अनेकानेक जीवोंकी योग्यता अक्षय सुखके उदयकी है, अतः तीर्थंकरसे भी अधिक सत्पुरुषका योग प्राप्त हुआ है, जिनकी नित्य प्रेरणा उधरसे विमुख कराकर स्वयंके नित्य भंडारकी ओर लक्ष्य कराती रहती है; यहाँसे ही पूज्य गुरुदेवके न्याय अनुभवसिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते हैं।....

''जिन (निज) सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायंतहि परमपद, लहिये एक क्षणेन।।''

वात्सल्यानुरागी
निहालचन्द्र

– परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक – ४५४

बंबई, प्रथम आषाढ़ वदी ४, सोम, १९४९

ॐ

यदि स्पष्ट प्रीतिसे संसार करनेकी इच्छा होती हो तो उस पुरुषने ज्ञानीके वचन सुने नहीं है; अथवा ज्ञानीपुरुषके दर्शन भी उसने किये नहीं है ऐसा तीर्थंकर कहते हैं।

जिसकी कमर टूट गई है, उसका प्रायः सारा बल परिक्षीणताको प्राप्त होता है। जिसे ज्ञानीपुरुषके वचनरूप लकड़ीका प्रहार हुआ है उस पुरुषमें उस प्रकारके संसार संबंधी बल होता है, ऐसा तीर्थंकर कहते हैं।

ज्ञानीपुरुषको देखनेके बाद स्त्रीको देखकर यदि राग उत्पन्न होता हो तो उसने ज्ञानीपुरुषको नहीं देखा, ऐसा आप समझें।

ज्ञानीपुरुषके वचन सुननेके बाद स्त्रीका सजीवन शरीर अजीवनरूपसे भासे बिना नहीं रहेगा।

धनादि संपत्ति वास्तवमें पृथ्वीका विकार भासित हुए बिना नहीं रहेगा।

ज्ञानीपुरुषके सिवाय उसका आत्मा और कहीं भी क्षणभर स्थायी होना नहीं चाहेगा।

इत्यादि वचनोंका पूर्वकालमें ज्ञानीपुरुष मार्गानुसारी पुरुषोंको बोध देते थे।

जिन्हें जानकर, सुनकर वे सरल जीव आत्मामें अवधारण करते थे।

प्राणत्याग जैसे प्रसंगमें भी वे उन वचनोंको अप्रधान न करने योग्य जानते थे, वर्तन करते थे।

आप सर्व मुमुक्षुभाईयोंको हमारा भक्तिभावसे नमस्कार पहुँचे। हमारा ऐसा उपाधियोग देखकर अंतरमें क्लेशित हुए बिना जितना हो सके उतना आत्मा संबंधी अभ्यास बढ़ानेका विचार करें।

सर्वसे अधिक स्मरणयोग्य बातें तो बहतुसी हैं, तथापि संसारमें एकदम उदासीनता, परके अल्पगुणोंमें प्रीति, अपने अल्प दोषोंमें भी अत्यंत क्लेश, दोषके विलयमें अत्यंत वीर्यका स्फुरना, ये बातें सत्संगमें केवल शरणागतरूपसे अखण्ड ध्यानमें रखने योग्य हैं। यथासंभव निवृत्तिकाल, निवृत्तिक्षेत्र, निवृत्तिद्रव्य और निवृत्तिभावका सेवन कीजिये। तीर्थंकर गौतम जैसे ज्ञानीपुरुषको भी संबोधन करते थे कि समयमात्र भी प्रमाद योग्य नहीं है।

प्रणाम।

*

भगवानकी आज्ञाका महत्व!!

– पूज्य भाईश्री

१२९ में कहते हैं *'भगवानकी आज्ञासे बाहर पाँव रखेगा तो डूब जायगा।'* जो वस्तुका स्वरूप केवलज्ञान और इसकी परम्परा अनुसार सत्शास्त्रोंसे प्रसिद्ध है। इसमें भी जो प्रत्येक पदार्थकी भिन्नता है सो मुख्य बात है। *'भगवानकी आज्ञासे बाहर पाँव रखेगा....'* यानी कि इनकी कही हुई बातकी अवहेलना करके प्रवर्तन करेगा *'तो डूब जायगा।'* संसारमें भटककर जन्म–मरणके समुद्रमें डूबता जायगा। और कोई इसका अंजाम नहीं आयेगा। *'आज्ञासे बाहर पाँव रखेगा...'* इसमें थोड़ी मृदुभाषाका प्रयोग है वरना वैसे तो आज्ञा पर पैर ही रख रहा है वह। जबकि आज्ञाको शिरोधार्य करनी चाहिए, मस्तक पर लगानी चाहिये – उस आज्ञाको पैरसे कुचल रहा है। इतना अनादर है उस विषयमें। स्पष्ट बात है कि जो पदार्थ तेरी जातिसे भिन्न है और इसका सेवन या आराधन उचित नहीं है या जिसे रुचिपूर्वक सेवन करनेसे अवश्य संसारमें दुःख, दुःख और दुःख ही मिलता है, फिर भी उस आज्ञाका उल्लंघन किया तो और कुछ नहीं होगा परन्तु तू डूब जायगा, और कोई इसका अंजाम नहीं है। हमलोग नहीं कहते कि यदि ज़हर खायेगा तो मर जायेगा (वैसे) यह ज़हर खानेकी बात है। डूबनेसे भी मृत्यु है और ज़हर खानेसे भी मृत्यु ही होती है।

भगवानकी मुख्य आज्ञा ऐसी है, यहाँसे अनर्पितरूपसे यह निकालना चाहिए कि, तू सर्वसे सर्व प्रकारसे सर्वदा–सर्वथा भिन्न ही है। जो भिन्न है उसे कहाँ तू अभिन्न जानकर सम्बन्ध जोड़ता है!! यह तो भगवानकी आज्ञा पर पैर रखनेकी बात है। किसीसे भी सम्बन्ध जोड़ा कि आज्ञाका लोप किया। मैं एक आत्मा हूँ। ज्ञानस्वभावी, चैतन्यस्वरूपी, चैतन्यद्रव्य, जगतका एक स्वतंत्र द्रव्य हूँ और वास्तवमें मेरा किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पूर्वकर्मके बाह्य सम्बन्ध हो तो भी तू भावसे, अभिप्रायसे और भावसे अंतरसे भिन्न हो जा, ऐसा कहना है। फिर जो बाहरी खोखले सम्बन्ध हैं वे अपने स्वकालमें पूरे हो जायेंगे। वह खोखले सम्बन्ध वैसे ही निकम्मे हैं परन्तु तू भीतरसे तो भिन्न हो जा। फिर तुझे कहीं रस नहीं आयेगा। वरना तेरी अनन्त शक्तिका रस इसमें तू बहा देगा। इतना रसमें बहेगा, इतना रसमें बहेगा कि तेरा भवभ्रमण ज्योंका त्यों खड़ा रहेगा।

वैसे जीव यदि छोटा गुनाह करे, कोई पाँच रुपयेकी चोरी करे या पाँच रुपया व्यापारमें अप्रमाणिकतासे धोखा करके नकली–असली करके ज्यादा भाव ले–ले लोगोंको लगता है कि, अरे! ऐसा काम करते हो! ऐसा काम करते हो! लेकिन भगवानकी आज्ञा पर पैर रखनेका काम ख़ुद कर रहा है उसकी हिचकिचाहट नहीं!! वह बड़ा गुनाह दिखता है, यह गुनाह दिखता नहीं। जगतमें जिसे गुनाह कहा जाता है वे सब भी करने योग्य तो नहीं हैं। वे सब करने योग्य हैं वह तो सवाल ही नहीं है। लेकिन इसकी महत्ता आये और बड़ा गुनाह जो स्वयं कर रहा है वह गुनाह ही नहीं लगता। और इसे तो ख़ुद गिनता ही नहीं – यह सबसे बड़ी आपत्तिवाली बात है।

*

(प्रवचनांश...श्री 'अध्यात्म सुधा' भाग – ४, प्रवचन क्र.–१००, बोल–१२९, दि.–३०–५–१९८७)

अहो गुरुका वात्सल्य !!

गुणके प्रति प्रेमके कारण गुणानुवाद होना वह भक्तिका स्वरूप है। अनन्त निजात्मगुणोंकी खिलवटका यह बीज है। ''वह केवल को बीजज्ञानी कहे।'' – (गुरुरूप) प्रभुके गुणोंकी भक्तिके गर्भमें एक अंश निर्मलतासे लेकर पूर्ण निर्मलता प्रगट होनेका बीजभूत कारण पड़ा है। (गुरु) / प्रभु तो परम निर्मल प्रेमकी प्रतिमा है। उनके नयन / दृष्टि परम प्रेम बरसाते हैं, रेलमछेल करके जीवको प्रेमरसमें सराबोर कर देते हैं। अहो! उनका वात्सल्य!

(– श्री 'अनुभव संजीवनी', बोल–१३३३)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3545**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur print 9374825041